हिन्दी भक्ति काव्य में सांसारिक बंधन और उनसे मुक्ति के निर्दिष्ट उपायः

प्राप्तिः 12.02.2021
स्वीकृतः 15.03.2021

डॉ. इ.जी. वजिरा प्रियांथी गुणसेन

Email: wajiragunasena@sjp.ac.lk

सारांश

भक्ति ने भारतीय धर्मों, जीवन, समाज, साहित्य और संस्कृति को गहरे तक प्रभावित किया है। हिन्दी ही नहीं, भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं, बोलियों और लोकगीतों के विकास में भी भक्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। धर्म की अवधारणा और उसका प्रवाह ज्ञान, कर्म, भक्ति की धाराओं में चलता है। ज्ञान का स्वरूप दार्शनिक–लाक्षणिक रहस्यवादी और दुरूह होने से वह सर्वजन सुलभ नहीं है। कर्म मानव मात्र की अनिवार्य नियति है, उससे बचा नहीं जा सकता। पर निष्काम कर्म भी योग का ही एक स्वरूप है। अतः निष्काम कर्म का प्रतिपादन करने वाला कर्मयोगी है। सांसारिक बंधनों और माया मोह की प्रबलता के चलने, सर्वसाधारण के द्वारा निष्काम कर्म का निष्पादन असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।

प्रस्तावना

भक्ति इन दोनों के विपरीत सर्वजन सुलभ है। ज्ञान मार्ग की दुरूहता और निष्काम कर्म की रुक्षता की तुलना में भक्ति भावनात्मक संवेगों के कारण रसमयी है। वह भक्त को भावनात्मक संबंधों के माध्यम से अपने उपास्य से जोड़ती है। वह किसी भी रूप में, कहीं भी और हर परिस्थिति में की जा सकती है। भक्ति के लिए किसी कर्मकाण्ड, यज्ञ, हवन, पूजा–दार्शनिक शास्त्रार्थ की आवश्यकता नहीं है। उसके लिए संसार और गृहस्थी का परित्याग भी अनिवार्य नहीं है। नित्य कर्म करते हुए, सांसारिक कर्मों के साथ ही ईश्वर भक्ति की जा सकती है। वह प्रत्येक को प्राप्य है। प्रेम, करुणा, दया, अश्रु, वात्सल्य, ममता और श्रद्धा की सशक्त रज्जुओं से भक्ति, भक्त को अपने आराध्य से बांधती है। यह आसक्ति सांसारिक उपलब्धियों की अपेक्षा आराध्य के प्रति होती है। ज्ञान और निष्काम कर्म व्यक्ति विशेष तक सीमित है; जबकि भक्ति का स्वरूप व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों हैं। वह जन सामान्य की सम्पत्ति है।

विभिन्न धर्मों, विभिन्न सम्प्रदायों से भरा हुआ– मध्ययुग का समाज दिनों दिन संकीर्ण होता जा रहा था। जाति बंधन कठोर होते जा रहे थे। वर्ग भेद भी बहुत था। स्त्री–पुरुष में भी आसमान जमीन का अंतर समझा जाता था। एक सम्प्रदाय के व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय के अनुयायी

को दृष्टि से नहीं देखता था। वैष्णव शैवों का, सगुण मार्गियों का वैषम्य विकृत रुप ६ ाारण कर रहा था वर्णाश्रम व्यवस्था विकृत हो चुकी थी, और कर्म पर आधारित न होकर जन्म पर आधारित हो गई थी। समाज की गत्यात्मक स्थिति जड़ हो चुकी थी।

भक्ति साहित्य ने व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक, दार्शनिक और अनेक क्षेत्रों में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। भक्त कवियों की दृष्टि से उस विकृत सभी परिस्थितियों का हेतुक तथ्य बंधन के प्रकार तथा कारण निम्न प्रकार होते हैं

बंधन के प्रकार

(1) पारिवारिक बंधन (सम्बन्ध और रिश्ते)
(2) सामाजिक बंधन (वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था)
(3) धार्मिक बंधन तथा साम्प्रदायिक बंधन
(4) भव बंधन (सांसारिक मोह, ममता, इन्द्रिय सुख, प्रकृति का सौन्दर्य)

बंधन के कारण

(1) अज्ञान
(2) अविद्या
(3) मोह
(4) माया

व्यक्तिगत स्तर पर मनुश्य के जीवन की सार्थकता पर गहराई से विचार किया। शरीर की क्षणभंगुरता, लौकिक सुखों की अनस्थिरता आदि। अष्टछाप के प्रतिनिधि कवि सूरदास जी ने दैन्य प्रकाशन तथा आत्मप्रबोधन सम्बन्धी पदों में ही जीव के विषय में अपने मत प्रकट किये हैं। वे जीव को "ब्रह्म" का अंश मानते हुए भी उसमें ऐश्वर्य, वीर्य यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य का अभाव बताते हैं। अविद्या के प्रभाव से पंचाध्यासों में भ्रमित उसकी स्थिति निम्नवत् प्रकट की है।

'अपुनपौ आपुन ही विसरयौ।
जैसे स्वान काँच–मन्दिर मैं भ्रमि–भ्रमि भूकि मरयौ।
ज्यौं केहरि प्रतिबिम्ब देखिकै, आपुन कूप परसौ
जैसे गज लखि फटिक सिला मैं, दसननि जाइ अरयौ।
सूरदास नलिनी कौ सुवटा, कहि कौनें पकरयौ।

(सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, पद 26)

"कांच मन्दिर में भौंकने वाले श्वान, कूप में कूदने वाले केहरि, स्फटिक शिला में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसमें दाँत अड़ा देने वाले हाथी या नलिनी के सुवटा के समान है। पर विद्या के प्रभाव से वह अपने चेतन और सनातन रूप को पहचान भी सकता है; इसके लिए भगवत् अनुग्रह अपेक्षित है।

जगत को ब्रह्म का परिणाम बताते हुए इसकी उत्पत्ति पानी में अविर्भूत बुद्बुदा से [illegible]

तिरोभूत हो जाता है।

"ज्यौं पानी में होत बुद्बुदा पुनि तामाहिं समाइ।
त्यौंही सब जग प्रकटत तुम तैं पुनि तुम माहि विलाइ।।
(सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद 4302, सभा संस्करण)

सामाजिक, राजनीतिक दृष्टि से व्यक्ति की दीन हीन स्थिति आदि पर भी भक्त कवियों ने प्रकाश डाला।

भक्ति कवि तुलसीदास जी ने तत्कालीन सांस्कृतिक परिवेश को खुली आंखों देखा था और अपनी रचनाओं में स्थान–स्थान पर उसके सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है। शासकों द्वारा सतत् शोषित दुर्भिक्ष की ज्वाला से दग्ध प्रजा की आर्थिक और सामाजिक स्थिति निम्नवत् प्रकट की है–

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न, चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई, का करी।।

शासकीय शोषण के अतिरिक्त भीषण महामारी, अकाल, दुर्भिक्ष आदि का प्रकोप भी अत्यन्त उपद्रवकारी है। काशीवासियों की तत्कालीन समस्या को लेकर कवि ने इस प्रकार लिखा–

संकर–सहर–सर–नारि–नर बारि बर,
विकल सकल महामारी भांजगई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात, थल–जल मीचुमई है।

उन्होंने तत्कालीन राजा को चोर और लुटेरा कहा

गोड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल।।

साधुओं का उत्पीड़न और खलों का उत्कर्ष बड़ा ही विडंबनामूलक था

वेद धर्म दूरी गये, भूमि चोर भूप भये,
साधु सीद्यमान, जान रीति पाप पीन की।

उस समय की सामाजिक अस्त–व्यवस्तता का यदि संक्षिप्ततम चित्र–निम्नप्रकार दिखाया।

प्रजा पतित पाखंड पाप रत, अपने अपने रंग रई है।
साहिति सत्य सुरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कवट कलई है।
सीदति साधु, साधुता सोचति, खल विलसत हुलसत खलई है।

कबीरदास अनुभूतिमार्गी थे। शास्त्रीय आतंक जाल का भंडाफोड़ कर लोकाचार के निविड जंजाल

को छिन्न–भिन्न कर निरावरण सत्य तक सहज ही पहुँचने की उनमें प्रतिभा थी। उन्होंने हिन्दू समाज की इन दो सबसे बड़ी कमजोरियों कुल अभिमान और बाह्माचार पर निर्मम आघात किया। वे कहते हैं–**"पण्डित वेदों को पढ़ गुन कर भी भ्रम में पड़ा हुआ है– अपना भेद आप ही नहीं जानता। अपने गुणों पर बड़ा गर्व करता है, लेकिन अधिक गर्व से किसी की भलाई नहीं होती। जो परमात्मा (उन्हीं ब्राह्मणों के अनुसार) गर्वप्रहारी है, वह गर्व कैसे सह सकता है? इसलिए ये पण्डित कुल अभिमान का भाव छोड़कर मुक्ति खोजो क्योंकि निष्काम कर्म करने से ही मोक्ष मिलता है– ऐसा तुम्हारा ही कहना है। जब बीज अंकुर सहित विनष्ट हो जाता है तभी विदेही मुक्ति मिलती है। (जिस प्रकार भुना हुआ बीज बोने से अँखुए नहीं फूटते उसी प्रकार निष्काम कर्म करने से ही जन्म–मरण के बंधन से मोक्ष मिलता है–ऐसा शास्त्रों में बताया गया है–**

"पंडित भूले पढ़ि गुनि बेदा। आप अपनपौ जान न भेदा।
अति गुन गराब करैं अधिकाई। अधिकै गरबि न होई भलाई।
जासु नाम है गरब प्रहारी। सो कस गरबहि सकै सहारी।
कुल अभिमान विचार तजि, खोजौ पद निर्बान।
अंकुर बीज नसाइगा, तब मिलै बिदेही थांन।।

(कबीर ग्रन्थावली, रमैनी 7) कबीर वाणी, पृ0 57.

कबीर के अनुसार राम नाम ही तत्ववाद का सार है। उसे भुलाकर जितने भी आचार किये जाते हैं, सब बंधन के कारण होते हैं। कबीर कहते हैं

तू बह्मन मैं कासी के जोलहा चीन्हि न मोर गियाना।
तैं सब मांगे भूपति राजा मौरै राम धियाना।
पूरब जन्म हम बम्हन होते ओछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीन्हा।
हम गोरू तुम गुआर गोसाई जनम जनम रखवारे।
कबहूं न पारि उतारि चराएहु कैसे धसय हमारे।
भो बूड़त कछू उपाई करीजै ज्यों तिरि लघै तीरा।
राम राम जपि भेरा बांधौ कहै उपदेस कबीरा।।

(कबीर ग्रन्थावली, पद 188)

"तुम ब्राह्मण हो, मैं काशी का (शूद्र) जुलाहा हूँ, लेकिन तुम्हें मेरे ज्ञान की परख नहीं है। तुम छोटे–मोटे राजाओं के यहाँ याचना करते हो, मेरा ध्यान राम पर लगा है। ओछे कर्मों के कारण और तप विहीन होने के कारण मैं भी पूर्व जन्म में ब्राह्मण बना, लेकिन राम की सेवा में चूक पड़ी, इसलिए उसने मुझे सजा दी और पकड़कर जुलाहा बना दिया। हमको गोरु (पशु) बनाते हो, खुद हमें चराने वाला ग्वाला बनते हो और जन्म जन्म का रखवाला बनते हो, लेकिन रोज–रोज एक ही खेत में बासी चारा चराते हो। कभी पार उतारकर चराते नहीं– कैसे मालिक

हो? (तात्पर्य यह कि ब्राह्मण कर्मजाल में लोगों को उलझाता है जिससे न अज्ञान का नाश होता है, न भवबंधन से मुक्ति मिलती है), इसलिए कबीर जुलाहा ब्राह्मण को यह उपदेश देता है कि भवसागर तरने की युक्ति करो और वह युक्ति यही है कि राम का बेड़ा बाँधों।"

"बालसखा की सेवा" यौवन आते ही प्रीति बन गई और मीरा के बचपन के 'सालगराम' युवावस्था में "गिरधर नागर" बन गए। दिन–प्रतिदिन मीरॉ इसी 'साँवरिया प्रियतम' के रंग में रंगती गई। विवाह प्रसंग पर मीरा ने स्पष्ट कर दिया यह वर आज का नहीं है– बल्कि अनेक युगों और अनेक जन्मों का है

"मीरा ने गिरधर मिल्या भव भव रा भरतार।"

"....., साँवरौ जनम जनम भरतार।"

साथ ही गिरधर से लगी यह प्रीति भी पूर्व जनम की है...." पूरब जन्म की प्रीति साँवरिया सोई बात बणैला।"

किन्तु लौकिक मर्यादा को भावों और भक्ति से नहीं बहलाया जा सकता था। अतः मीरा के लिए उसके दादा राव दूदा जोधावत की अन्तिम इच्छा के अनुसार, मीरा के योग्य ही जगत का सर्वश्रेष्ठ 'वर' ढूँढ़ा गया। वैष्णव भक्त मीराँ विवाह के पश्चात् चित्तौड़ आई। चित्तौड़ के सिसोदिया राणा शिव के उपासक माने जाते हैं। सर्वप्रथम उनसे 'गणगौर' पूजन के लिए कहा गया, किन्तु मीरा ने स्पष्ट कह दिया–

"नहीं पूजूं गिणगौर जै। नहीं पूजूं आन देव।
बाल सनेही गोविन्दो। जाको ये नहीं।।"

(मीरा ग्रन्थावली, कल्याण सिंह शेखावत, पृ0 135.)

इस तरह ज्ञात होता है कि मीरा अपने उपास्यदेव के प्रति कितनी आस्था रखती थी। 'गिरधर' को विस्मृत कर देना, सन्तसमागम छोड़ देना, भक्ति को भूल जाना उसके लिए असंभव है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सांसारिक माया मोह से छूटने का उपाय तथा सच्चा सुख, सच्ची शान्ति, नित्य आनन्द की प्राप्ति का उपाय भक्ति साहित्य की दृष्टि में एकमात्र भगवान के चरण कमलों की सेवा ही है। ईष्वर भजन के अतिरिक्त संसार में और कुछ भी करने से शान्ति पाना असम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1ण आषा गुप्त. भक्ति सिद्धान्त, लोकभारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 2007.

2ण कल्याणमल लोढ़ा व जयकिषनदास सादानी. भक्ति तत्व (दर्षन साहित्य–कला), भारतीय भाशा परिशद, कलकत्ता, 1995.

3ण कष्णदत्त पालीपाल– भक्ति काव्य से साक्षात्कार, भारतीय ज्ञानपीठ, 2007.

4ण डॉ0 किषोरी लाल. सूरदास और भ्रमरगीत सार, अभिव्यक्ति प्रकाषन, बी–31, गोविन्दपुर कॉलोनी, इलाहाबाद, 2009.

5ण डॉ0 दीनदयालु गुप्त. अश्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (द्वितीय भाग), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 2000.

6ण डॉ0 दीनदयालु गुप्त. अश्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (प्रथम भाग), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1999.

7ण डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा. सूरसागर सार सटीक, साहित्य भवन प्रा0 लिमिटेड, जीरो रोड, इलाहाबाद–2009.

8ण डॉ0 नगेन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास, म्यूट पेपर वौक्स, ए–65, सेक्टर–5, नोएडा, 2000.

9ण डॉ0 नगेन्द्र. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, हिन्दी माध्यम, कार्यान्वय निर्देषन, दिल्ली–2009.

10ण डॉ0 प्रेमषंकर. भक्ति काव्य का समाज दर्षन, वाणी प्रकाषन, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली, 2007.

11ण डॉ0 मधुरिमा सिंह, आत्मा–कर्म–पुनर्जन्म और मोक्ष, लोकभारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 2008.

12ण डॉ0 रामचन्द्र षुक्ल, तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काषी, सं0 2004 विक्रमी.

13ण डॉ0 रामचन्द्र षुक्ल. हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद, 2009.

14ण डॉ0 सेवा सिंह, भक्ति और जन, गुरु नानक देव युनिवर्सिटी, अमष्तसर, 2005.

15ण डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी. कबीर.

16ण डॉ0 हरिवंष लाल षर्मा, सूर और उनका साहित्य, भारत प्रकाषन मंदिर, सुभाश रोड, अलीगढ़, 1995.

17ण देवीषंकर अवस्थी. भक्ति का संदर्भ, वाणी प्रकाषन, 2005.

18ण पं0 परषुराम चतुर्वेदी. संत और सूफी साहित्य, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी.

19ण प्रो0 भारत भूशण 'सरोज' तथा डॉ0 कष्णदेव षर्मा. तुलसीदास, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा.

20ण राममूर्ति पाठक. भारतीय दर्षन की समीक्षात्मक रुपरेखा, अभिमन्यु प्रकाषन, इलाहाबाद, 1997.

21ण विष्वनाथ त्रिपाठी. लोकवादी तुलसीदास, राधाकष्ण स्टूडियो, नवीन षाहदरा, दिल्ली, 2011.

मूल–ग्रन्थ

1ण

कबीर ग्रन्थावली, ष्याम सुन्दर दास सभा संस्करण, 1928ई0

2ण

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, सूरसागर सार, नागरी प्रचारिणी सभा, साहित्य भवन प्रा0लि0, इलाहाबाद.

3ण

डॉ0 पारसनाथ तिवारी. कबीर वाणी, राका प्रकाषन, इलाहाबाद, 2005.

4ण

डॉ0 पारसनाथ तिवारी. कबीर–वाणी–सुधा, राका प्रकाषन, इलाहाबाद, 2003.

5ण

डॉ0 राज नागपाल, मीराबाई की पदावली, अनीता प्रकाषन, 8, मेहता मार्केट, 1680, नई सड़क, दिल्ली.

6ण

तुलसी ग्रन्थावली (तीसरा भाग), नागरी प्रचारिणी सभा, काषी.

7ण

नंददुलारे वाजपेयी, सूरसागर पहला खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 2029 विक्रमी.

8ण

नंददुलारे वाजपेयी, सूरसागर दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 2026 विक्रमी.

9ण

माता प्रसाद गुप्त, कबीर ग्रन्थावली, लोकभारती प्रकाषन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, फरवरी, 1969.

10ण

योगेन्द्र प्रताप सिंह, रामचरितमानस, लोक भारती प्रकाषन, इलाहाबाद.